इकाई 1 पञ्चमहाभूत एवं तन्मात्राएं

इकाई प्रारूप

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 वास्तुशास्त्र की सामान्य अवधारणा

1.3 वास्तुशास्त्र में पञ्चमहाभूत और तन्मात्राओं की अवधारणा

1.4 महाभूत एवं तन्मात्राओं के प्रकार

1.4.1 शब्द तन्मात्रा एवम् आकाश महाभूत

1.4.2 स्पर्श तन्मात्रा एवं वायु महाभूत

1.4.3 रूप तन्मात्रा एवम् अग्नि महाभूत

1.4.4 रस तन्मात्रा एवं जल महाभूत

1.4.5 गन्ध तन्मात्रा एवं पृथ्वी महाभूत

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 उपयोगी पुस्तकें

1.8 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- वास्तुशास्त्र की सामान्य अवधारणा को समझ सकेंगे।
- पंचमहाभूत की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- तन्मात्राओं की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- शब्द तन्मात्रा और आकाश महाभूत की वास्तुशास्त्रीय अवधारणा को समझ सकेंगे।
- स्पर्श तन्मात्रा एवं वायु महाभूत की वास्तुशास्त्रीय अवधारणा को समझ सकेंगे।
- रूप तन्मात्रा एवं अग्नि महाभूत की वास्तुशास्त्रीय अवधारणा को समझ सकेंगे।
- रस तन्मात्रा एवं जल महाभूत की वास्तुशास्त्रीय अवधारणा को समझ सकेंगे।
- गन्ध तन्मात्रा एवं पृथ्वी महाभूत की वास्तुशास्त्रीय अवधारणा को समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

वस्तुतः प्राचीन भारत में वास्तुशास्त्र का दृष्टिकोण बहुत ही महत्वपूर्ण एवं व्यापक व स्पष्ट है।

वास्तविक रूप में देखा जाए तो यह परमाणु तथा अणु के मेल से ही किसी पिण्ड अथवा वास्तु का निर्माण होता है तथा यही वस्तु व पिण्ड का निर्माण व उसमें होने वाली प्रक्रिया दोनों ही वास्तु के विषय हैं। यह दृश्यमान जगत भी वास्तु का ही एक साक्षात् स्वरूप ही है क्योंकि इस जगत का निर्माण भी परमाणु व अणुओं से ही हुआ है। जनसामान्य की धारणा है कि विश्व निर्माण की प्रक्रिया के साथ ही वास्तुशास्त्र की अवधारणा का विकास भी प्रारम्भ हो जाता है इसलिए वैदिक ऋषिगण भी इसी विषय के चिन्तन में संलग्न रहे कि आखिर इस विश्व की रचना किसने की ? और कैसे की ? इस विश्व की रचना में किन किन पदार्थों का उपयोग किया गया ? इत्यादि। इसी चिन्तन के सन्दर्भ में अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दैवी अवधारणा ही सच्चे अर्थों में वास्तुशास्त्र का मूल है क्योंकि सनातन संस्कृति के अनुसार ज्ञान के प्रथम स्रोत ऋग्वेद में वास्तु से सम्बन्धित वास्तु **वास्तोः**[1] **वास्तूनी**[2] तथा **वास्तोष्पति**[3] आदि शब्दों का विवरण दैवी अवधारणा को ही सन्दर्भित करते हैं। वैदिक ऋषियों के चिन्तन से यह उद्घाटित होता है कि आध्यात्मिकता के चिन्तन से सर्वत्र सर्जनात्मकता जीवन की श्रेष्ठता स्थापित हो, इसलिए ही वास्तुशास्त्र में सर्वत्र दैवीय अभिव्यक्तियां मिलती हैं। इन्हीं तथ्यों के कारण वास्तोष्पति नामक एक देव की कल्पना की गयी जो कि भवनों या वास्तुगत संरचनाओं से ही नहीं अपितु वहां निवास करने वाले समस्त जीवों के सर्वविध अभ्युदय से सम्बन्ध रखता है। भारतीय सनातन परम्परा में वास्तु के इस प्रकार दैवीय चिन्तन का परिणाम यह हुआ कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वास्तु संरचनायें देव भावना के साथ पूजित एवं निर्मित की जाने लगी और यह परम्परा आज तक जीवन्त रूप से चली आ रही है।

वस्तुतः वेद का यह घोष की यह भूमि मेरी माता है तथा हम इसकी सन्तान है सर्वविदित है परन्तु यहां यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि यह भूमि जो कि हमारी मां है इसका प्रादुर्भाव आखिर कैसे हुआ ? तो इसी जिज्ञासा के समन हेतु वेदान्त सार कार का वचन है कि **तमः प्रधान - विक्षेपशक्तिमद्- अज्ञान-उपहित-चैतन्याद् आकाशः आकाशाद् - वायुः वायोः अग्निः अग्नेः आपः अद्भ्यः पृथिवी च उत्पद्यते**[4] अर्थात् तमस् प्रधान विक्षेपशक्ति वाले अज्ञान उपाधि के साथ युक्त चैतन्य से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। जैसा कि पूर्व में ही स्पष्ट है कि हमारी संस्कृति में दैव तत्व की प्राधानता है इसलिए इन उपर्युक्त आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी आदि तत्व भी दैव तत्व से अभिभूत हैं। इन्हीं तत्वों को महाभूत के नाम से भी जानते हैं।

इन महाभूतों के साथ इनकी तन्मात्राएं भी जुड़ी हुई हैं जिनको हम पृथक नहीं कर सकते हैं। महाभूत और इनकी तन्मात्राओं को हम इस सारिणी के अनुसार समझ सकते हैं -

महाभूत	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
तन्मात्रा	शब्द	स्पर्श	रूप	रस	गन्ध

[1] ऋग्वेद 5.41.8, 7.54.1-3, 7.55.1, 8.17.14

[2] ऋग्वेद 1.154.6

[3] ऋग्वेद 5.54.1-3

[4] वेदान्त सार 2.57

1.2 वास्तुशास्त्र की सामान्य अवधारणा

भारतीय सनातन संस्कृति के मूल आधार सृष्टि ज्ञान के आदि स्रोत वेद हैं । वेदों में ही हमारे ऋषियों का अलौकिक ज्ञान प्रतिफलित होता दिखाई देता है। यहां यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए की जिन विद्याओं का वैदिक पृष्ठभूमि पर विकास हुआ, वे विद्याएं मानव ही नहीं अपितु सृष्टि के प्रत्येक जीव के लिए सर्वथा कल्याणकारी ही सिद्ध हुई । वास्तव में मनुष्य एवं समस्त जीवों के निवास एवं कार्य करने योग्य भूमि एवं भवन को वास्तु कहते हैं और जिस शास्त्र में भूमि एवं भवन में निवास तथा कार्य करने वाले लोगों को अधिकतम सुविधा व सुरक्षा की प्राप्ति के विविध सिद्धान्तों एवं नियमों व विधियों एवं प्रविधियों का प्रतिपादन किया जाता है, उस शास्त्र को वास्तुशास्त्र कहते हैं । कई शास्त्रकारों के अनुसार यह वास्तुशास्त्र ज्योतिष शास्त्र के संहिता खण्ड से सम्बन्धित मानते हैं तथा कई शास्त्र कार इसे अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्य वेद के रूप में मानते हैं । साथ ही यहां यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि समराङ्गणसूत्रधार ग्रन्थकार ज्योतिष को वास्तु के आठ अंगों में एक अंग मानता है ।[5] अतः एक प्रकार से कह सकते हैं कि ज्योतिष और वास्तुशास्त्र में परस्पर अङ्गा अङ्गी भाव है, और जब हम वास्तुशास्त्र की बात करते हैं तो यह शास्त्र वास्तव में पञ्चमहाभूतों के परस्पर तालमेल एवं प्राकृतिक शक्तियों के प्रबन्धन द्वारा न केवल मानव जीवन अपितु समस्त जीवों के क्रियाकलापों में उनको सुविधा एवं सुरक्षा देने के लिए सतत प्रयत्नशील दिखलाई देता है। सामान्यतया वास्तुशास्त्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह शास्त्र वास्तव में आकाश - वायु - अग्नि - जल - पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतों से निर्मित समस्त जीवों के जीवन में इन्हीं पंच महाभूतीय वातावरण से साथ उसका सामञ्जस्य स्थापित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता तो देता ही है साथ ही हमारा तन एवं मन तथा जीवन इन महाभूतों के सन्तुलन से स्वतः स्फूर्त और इनके असन्तुलन से शिथिल सा भी हो जाता है यह ध्यान रखना चाहिए । अतः वास्तुशास्त्र का स्थान हमारे जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

1.3 वास्तुशास्त्र में पञ्चमहाभूत और तन्मात्राओं की अवधारणा

सृष्टि उत्पत्ति विषय में आर्ष ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त तथा भास्कराचार्य आदि आचार्यों ने श्रुति - पुराण सांख्य योग आदि शास्त्रों के आधार पर सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन किया है तथापि भास्कराचार्य ने अपने अप्रतिम ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि में इस सन्दर्भ में लिखते है कि सर्वप्रथम परम ब्रह्म परमेश्वर (वासुदेव) अथवा सांख्यमत में पुरुष से प्रकृति (संकर्षण) की उत्पत्ति हुई तदनन्तर बुद्धि जिसे महान नाम से जानते हैं जिसे प्रद्युम्न भी कह सकते हैं। फिर अंहकार जिसे अनिरूद्धः के नाम से जानते है। फिर अहंकार से सात्विक राजसिक तामसिक सृष्टि उत्पन्न हुई इसे ही क्रमशः वैकारिक-तैजस-भूतादि के नाम से जानते हैं। सात्विक (वैकारिक) सृष्टि से दिशा-वायु-सूर्य-वरूण-अश्विन कुमार-अग्नि-इन्द्र-विष्णु-मित्र-प्रजापति-चन्द्र आदि की सृष्टि हुई। इसी प्रकार राजसिक (तेजस) से ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय तथा मन का सृजन हुआ । तमस तत्त्व से पांच तन्मात्राओं **शब्द - स्पर्श- रूप - रस - गन्ध** की उत्पत्ति फिर इन पांच तन्मात्राओं से पंचमहाभूतों **आकाश - वायु - अग्नि - जल - पृथ्वी** की उत्पत्ति हुई।

---

[5] सामुद्रं गणितं चैव ज्योतिषं छन्द एव च .। सिराज्ञानं तथा शिल्पं यन्त्रकर्मविधिस्तथा॥
एतान्यङ्गानि जानीयाद् वास्तुशास्त्रस्य बुद्धिमान् । शास्त्रानुसारेणाभ्युद्य लक्षणानि च लक्षयेत् ॥
समराङ्गणसूत्रधार 44.3-4

और इन्हीं पांच महाभूतों से इस भौतिक जगत का सृर्जन हुआ। शब्दस्पर्शादि पाञ्चतन्मात्राओं में ही आकाशादि पंचमहाभूत अभिव्यक्त होते हैं यही बात वेदान्त सार में भी कही गयी है।[6]

हमारी वैदिक चिन्तनधारा में विविध विद्या हैं पर वास्तुविद्या एक एसी विद्या है जिसमें मनुष्य मात्र के लिए आवास एवं अन्य कार्यों के लिए बनाए भवनों में पूर्वोक्त आकाशादि पञ्चमहाभूतों के परस्पर संतुलन को ध्यान में रखकर उस भवन के निर्माण हेतु विविध नियमों व सिद्धान्तों का हमारे आचार्यों ने प्रस्तुतिकरण किया है, जिससे वहां रहने वाले लोगों की शारीरिक व मानसिक क्षमताओं को सक्रिय एवं उन्नत रखा जा सके यही कारण है कि इस शास्त्र का मानवजीवन में सार्वभौम उपयोग एवं महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

1.4 महाभूत एवं तन्मात्राओं के प्रकार

अखिल ब्रह्माण्ड में आकाश - वायु - अग्नि - जल - पृथ्वी आदि पंचमहाभूतों की सत्ता सर्वत्र विराजमान है। इन पाञ्चमहाभूतों के बिना इस चराचर जगत और जीवन की कल्पना असंभव है। वस्तुतः इस सम्पूर्ण सौरमण्डल में ग्रह - नक्षत्र - तारे आदि के मूर्तत्व में आनुपातिक रूप से इन पाञ्चमहाभूतों का ही योगदान है। इन पञ्चमहाभूतों में पृथ्वी आदि से गुणों में क्रमिक ह्रास भी होता है जैसे पृथ्वी नामक महाभूत में सबसे अधिक पांच गुण हैं इसी प्रकार अब क्रमशः गुणों में ह्रास भी देखने को मिलता है यथा जल में चार गुण और अग्नि में तीन गुण तथा वायु में दो गुण एवं आकाश में एक गुण ही विद्यमान है। महाभूतों के ये विशेष गुण ही तन्मात्राएं कहलाती हैं। उपरोक्त में एकाधिक गुणशाली तत्वों में उनका एक ही गुण विशिष्ट तथा अन्य गुण सामान्य होते हैं। इसे निम्न तालिका द्वार हम और स्पष्टतया समझ सकते हैं, यथा -

आकाशादि पाञ्चमहाभूतों के गुणादि स्पष्टार्थ चक्र

क्र. सं.	पाञ्चमहाभूत	तन्मात्रा	सामान्य गुण	विशेष गुण
01.	**आकाश**	**शब्द**	**शब्द**	**शब्द**
02.	**वायु**	**स्पर्श**	शब्द, **स्पर्श**	रूपरहित स्पर्श
03.	**अग्नि**	**रूप**	शब्द, स्पर्श, **रूप**	उष्ण स्पर्श
04.	**जल**	**रस**	शब्द, स्पर्श, रूप, **रस**	शीतल स्पर्श
05.	**पृथ्वी**	**गन्ध**	शब्द, स्पर्श, रूप, रस, **गन्ध**	गन्धवती

वास्तुशास्त्र उपर्युक्त आकाशादि पञ्च महाभूतों के तालमेल से मानव जीवन व आसपास के वातावरण में समञ्जस्य स्थापित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। पञ्चमहाभूत व इनके विशेष गुण अथवा इनकी तन्मात्राओं के विशेष तालमेल को ही दार्शनिक पंचीकरण के

[6] वेदान्त सार 2.103

सिद्धान्त के नाम से जानते हैं[7], जिसे (पंचीकरण को) हम निम्न सारिणी के द्वारा सरलता से समझते हैं, यथा -

क्रम सं.	महाभूत	तत्त्व
01.	आकाश 50 प्रतिशत	वायु - 12.5 प्रतिशत अग्नि - 12.5 प्रतिशत जल - 12.5 प्रतिशत पृथ्वी - 12.5 प्रतिशत
02.	वायु 50 प्रतिशत	आकाश - 12.5 प्रतिशत अग्नि - 12.5 प्रतिशत जल - 12.5 प्रतिशत पृथ्वी - 12.5 प्रतिशत
03.	अग्नि 50 प्रतिशत	आकाश - 12.5 प्रतिशत वायु - 12.5 प्रतिशत जल - 12.5 प्रतिशत पृथ्वी - 12.5 प्रतिशत
04.	जल 50 प्रतिशत	आकाश - 12.5 प्रतिशत वायु - 12.5 प्रतिशत अग्नि- 12.5 प्रतिशत पृथ्वी - 12.5 प्रतिशत
05.	पृथ्वी 50 प्रतिशत	आकाश - 12.5 प्रतिशत वायु - 12.5 प्रतिशत अग्नि- 12.5 प्रतिशत जल - 12.5 प्रतिशत

यही पञ्चीकराण के सिद्धान्त का प्रतिरूप वास्तुशास्त्र में भी स्पष्ट दिखाई देता है क्योकि वास्तुशास्त्रानुसार जब हम किसी क्षेत्र का विश्लेषण करते हैं तो सर्वप्रथम हम इन्हीं आकाशादि पंच महा तत्त्वों का ही सामञ्जस्य देखते हैं तथा इन महातत्वों के उचित तालमेल से ही उस वास्तु क्षेत्र पर रहने से हम समुचित सुविधा - सुरक्षा - शान्ति आदि प्राप्त कर सकते हैं। अतः वास्तुक्षेत्र में किसी भी निर्मिति से पूर्व हमें वहां आकाशादि महाभूतों के विषय में चिन्तन कर लेना चाहिए, एतदर्थ उस वास्तुक्षेत्र जिस पर हम आवास आदि निर्माण करने जा रहे हैं उसको सर्वप्रथम पांच भागों में बाटना चाहिए, जिसमें ईशान की तरफ जल क्षेत्र आग्नेय की ओर अग्नि नैऋत्य की तरफ भूमि तथा इसी प्रकार वायव्य की ओर वायु नामक महाभूत स्थित रहते हैं तथा

[7] वेदान्तसार 2.99

भूमि के मध्य भाग में आकाश तत्व उपस्थित रहता है जिसे हम निम्न चित्र के माध्यम से सरलता से समझ सकते हैं –

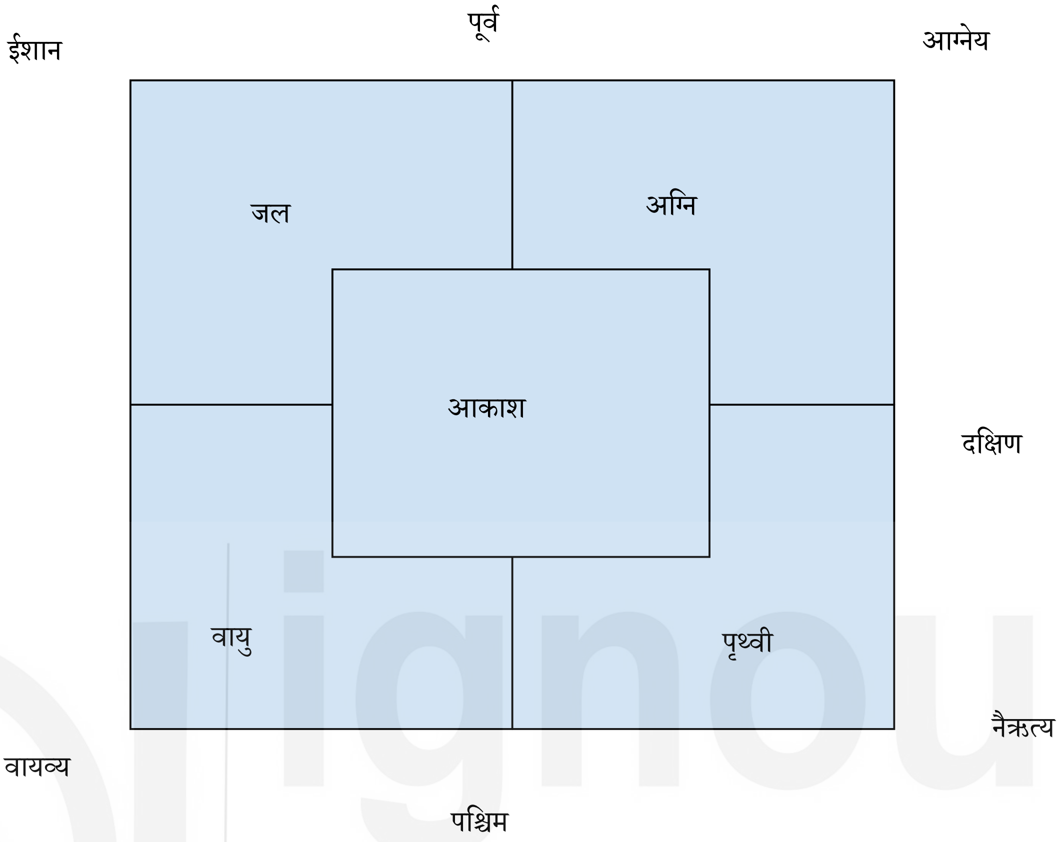

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि वास्तुक्षेत्र के मध्य भाग में आकाश महाभूत का स्थान है तथा यह शेष सभी महाभूतों में समान रूप से समाहित है। आइए अब क्रमशः आकाशादि पंचमहाभूतों के बारे में और विस्तृत अध्ययन करते हैं

1.4.1 शब्द तन्मात्रा एवम् आकाश महाभूत

वस्तुतः पाञ्चमहाभूतों का आधार यह आकाश ही है जिससे सभी का उद्भव हुआ है अतः इन महाभूतों में आकाश का सर्वाधिक महत्व है। यह सभी महाभूत अर्थात् पृथ्वी - जल - वायु - अग्नि आदि सभी से विस्तृत व अत्यन्त व्यापक तो है ही साथ ही इसका विस्तार अनन्तानन्त है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आकाश महाभूत में सावकाश तथा निरवशेष संस्थित है। यहां पर सावकाश से तात्पर्य सरल शब्दों में समझें तो तात्पर्य यह है कि इस आकाश में ब्रह्माण्ड को रख देने पर जो रिक्तता यानि अवकाश शेष रह जाता है तथा निरवशेष से तात्पर्य है कि इस आकाश में ब्रह्माण्ड के स्थित होने पर ब्रह्माण्ड का कोई भी छोटा या बड़ा अंश अवशेष अर्थात् बच नहीं पाता।[8] यह आकाश नामक महाभूत की तन्मात्रा है शब्द। शब्द तन्मात्रा की अभिव्यक्ति हम आकाश के माध्यम से ही समझ सकते हैं। हम उपर्युक्त बातों को संज्ञान में लेकर यह चिन्तन करें कि अगर यह आकाश ही नहीं होता तो क्या होता ? तब जीव जगत की ही उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् न ब्रह्माण्ड होता और न ही हमारी पृथ्वी होती, तात्पर्य यह है कि कुछ भी नहीं

[8] उद्धृत भारतीय वास्तुशास्त्र, प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी, पृष्ट 17

होता। क्योंकि इस सकल ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई स्थान ही नहीं है जहां आकाश तत्त्व व्याप्त न हो। क्योंकि प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया अथवा गतिविधि के लिए खाली स्थान चाहिए होता है तथा यह खाली स्थान विना आकाश के संभव ही नहीं है। इसलिए इस भुवन में अथवा ब्रह्माण्ड में आकास का महत्व सतत अक्षुण्ण है।

आकाश की महत्ता इस बात से भी जानी जा सकती है कि इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है उसका मूल कारण आकाश ही है। चाहें हम आकाशगंगाओं की बात करें अथवा अनगिनत निहारिकाओं की बात करें अथवा अनन्त तारे या सौर परिवार के सदस्य ग्रह तथा उपग्रह ही क्यों न हों सब आकाश में ही समाहित हैं। किसी भी प्रकार की ऊर्जा ही क्यों न हों जैसे सौर ऊर्जा - चुम्बकीय ऊर्जा - पृथ्वी का गुरुत्वबल आदि सब आकाश से ही हैं। समस्त प्रकार की गैंसें चाहे आक्सीजन, कार्बनडाई आक्साइड,नाईट्रोजन, हाइड्रोजन, हीलियम आदि समस्त गैंसो को साथ ही प्रकाश की किरण अथवा विकिरण, विविध प्रकार की तरंगे आदि सब कुछ जो हम चिन्तन कर सकते हैं वह सब कुछ इस अनन्त आकाश में ही समाहित है।

जैसे कोई भी जीव अपने शरीर के आन्तरिक तथा बाह्य समस्त अंग अपनी जो भी स्वाभाविक क्रिया अथवा प्रतिक्रिया आदि करते हैं उन सबमें आकाश सहायक होता है ठीक उसी प्रकार जब हम व्यक्ति के अनुसार उचित स्थान पर वास्तु के समस्त सिद्धान्तों के अनुसार कोई भवन आदि बनाते हैं तो उस निर्माण के भीतर तथा बाह्य समस्त प्रकार के क्रियाकलाप आकाश महाभूत की सहायता से ही संपूरित होते हैं। भवन के अन्दर हंसना - रोना - चिल्लाना - सोना - भोजन - गाना - बजाना - नृत्य - खेलना आदि समस्त कार्य हम आकाश महाभूत की सहायता से ही कर पाते हैं। शायद इसलिए ही वास्तुशास्त्र में इस महाभूत का विशेष ध्यान रख कर भवन निर्माण में एकशाला से लेकर बहुमंजिला आदि विविध प्रकार भवनों में उंचाई - लम्बाई - चौड़ाई - खुली जगह - बरामदा - द्वार - खिड़की - झरोखे - ब्रह्मस्थान - आंगन आदि का विचार किया जाता है जिससे कि आकाश तत्त्व का ठीक ठीक सदुपयोग किया जा सके।

1.4.2 स्पर्श तन्मात्रा एवं वायु महाभूत

जैसा कि विदित है कि आकाशादि पंचमहाभूतों कि उत्पत्ति में शब्दादि पञ्चतन्मात्राओं का सहयोग रहा है इसलिए रूप रहित स्पर्श तन्मात्रा वायु नामक महाभूत की उत्पत्ति में प्रमुख कारण है। दूसरे शब्दों में कहें तो स्पर्श ही वायु नामक महाभूत की तन्मात्रा है। वस्तुतः आकाश से वायु का प्रादुर्भाव होता है क्योंकि बिना आकाश के वायु का होना असम्भव है तथा वायु के बिना इस संसार में किसी की सांसे चलना असम्भव है अतः इस चराचर जगत में जीवन जीने हेतु वायु का होना अत्यन्त आवश्यक है अतः आकाश तत्त्व की तरह ही यह वायु नामक महाभूत भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हमारे शरीर में प्राण - अपान - व्यान - उदान - समान आदि पांच प्रकार की वायु रहती हैं जिससे शरीर का सम्यकतया संचालन होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो जब तक ये वायु शरीर में सक्रिय हैं तब तक ही जीवन है, तथा जब ये वायु निष्क्रिय हो जाती है तो यह शरीर भी अपनी जीवन यात्रा पूरी कर लेता है। शरीर में छींक - पाद - डकार - अंगों का फड़कना - हृदय की धड़कन आदि वायु की सक्रियता के प्रतीक हैं।

वस्तुतः हमारे आस पास के वातावरण अथवा वायुमण्डल में सर्वत्र आक्सीजन - कार्बनडाई आक्साइड - नाईट्रोजन - हाईड्रोजन - आर्गन - हीलियम - ओजोन - वाष्पकण आदि मिले रहते हैं। प्राणियों के जीवन के लिए तथा अग्नि आदि को जलाने हेतु वातावरण में आक्सीजन

का होना आवश्यक है इसी प्रकार वृक्ष - वनस्पति आदि के लिए नाइट्रोजन की आवश्यक्ता होती है। प्राणीमात्र के जीवन के लिए वायु में 21 प्रतिशत आक्सीजन तथा 78 प्रतिशत नाइट्रोजन का होना आवश्यक है। सामान्यतया वायु सभी प्राणियों अथवा जीव धारियों के जीवन और उनकी समस्त गतिविधियों के लिए परमावश्यक तत्त्व है। मानव शारीरिक एवं मानशिक संतुलन, सक्रियता एवं विकास के लिए वायुमण्डल में पूर्वोक्त गैंसों का सही प्रतिशत मात्रा में होना, खुली हवा का संचरण, सही वायुमण्डलीय दाब तथा सही मात्रा में आद्रता या नमीं का होना आवश्यक है। इसलिए वास्तुशास्त्र भवन निर्माण में खुली जगह, बरामदे, छत की उंचाई, द्वार, खिड़की, झरोखे और आसपास में पेड़ - पौधे लगाने का विचार करता है, जिससे भवन में वायुतत्त्व का सही और संतुलित रूप से उपयोग किया जा सके।[9]

1.4.3 रूप तन्मात्रा एवम् अग्नि महाभूत

रूप तन्मात्रा अग्नि महाभूत की तन्मात्रा है, इसका स्पर्श उष्ण है। वायु महाभूत से अग्नि महाभूत की उत्पत्ति हुई है ऐसा शास्त्रकारों ने प्रमाणित किया है। शास्त्रों में सूर्य को जगत की आत्मां के साथ - साथ ही समस्त जगत की ऊर्जा का स्रोत भी माना है। यह सूर्य समस्त विश्व को केवल प्रकाश - ऊष्मा - ऊर्जा आदि ही नहीं देता अपितु इसकी सापेक्षता में भूमि की गति से अहोरात्र बनते हैं साथ ही ऋतुओं का परिवर्तन होता है। शुष्क एवं मानसूनी हवाओं का चलना सूर्य की ऊर्जा और उसके तापमान पर ही निर्भर करता है। सूर्य के कारण ही समस्त भूमण्डल पर जलवायु पर विविधता पाई जाती है यथा - भूमध्य रेखा के आसपास के क्षेत्रों में सूर्य की किरणें लम्बवत सीधी पड़ती है जिससे वहां का तापमान अधिक रहता है इसी प्रकार उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव क्षेत्रों पर सूर्य की किरणे तिरछी पड़ती है जिससे वहां का तापमान शून्य से कम रहता है जिसका परिणाम यह है कि वह क्षेत्र सर्वदा बर्फ से आच्छादित रहतता है।

वस्तुतः समस्त जीवधारियों के शरीर में जब तक गरमीं है तभी तक उसका रहता है तथा जैसे ही यह गर्मी ठण्डी होती है उसका जीवन समाप्त हो जाता है अर्थात् मृत्यु हो जाती है। अग्नि महाभूत प्रकाश और ताप के रूप में ऊर्जा का संचार करता है। इस विश्व में सूर्य ऊर्जा एवं उष्मा अथवा ताप का मुख्य केन्द्र है। इसलिए आज के वैज्ञानिक, मानव तथा अन्य प्राणियों के उपर सूर्य आदि ग्रहों के प्रभाव में आस्था रखें या न रखें किन्तु वे इस बात से आश्चर्यान्वित हुए बिना नहीं रह सकते कि समुद्र की समतलता में, वायुमण्डल के दबाव में, ऋतुओं के परिवर्तन में और भूकम्प आदि की आवृत्तियों में जो घटनाक्रम दिखलाई दे रहा है, उसका सूर्य और चन्द्रमां की गतिविधियों के साथ सीधा सम्बन्ध है। इस सन्दर्भ में हमारे ऋषियों व आचार्यो ने भूमण्डल पर स्थित पदार्थों पर पड़ने वाले आकाशीय पिण्डों के प्रभावों को भी अपने दैनन्दिन जीवन में प्रत्यक्षीकरण किया कि सूर्योदय होने पर कुण्ड पोखरों में कमल खिल जाता है सायंकाल होते ही वह अपने आप को समेट लेता है, इसी प्रकार सूर्य अस्त होने पर रात्रि होती है तब चन्दमां को देखते ही कुमुदिनी नामक पुष्प खिल जाता है, दिन होने पर सूरजमुखी का पुष्प सूर्य को देखता रहता है, ग्रहण काल में वनस्पतियों का मुर्झाये सा रहना, इतना ही नहीं ग्रहण के समय समुद्र के जलस्तर का घटना बढना। और तो और पूर्णिमां के दिन पागलों का अधिक व्यग्र होना, समुद्र में ज्वार भाटे का आना आदि आदि ऐसे अनेक उदाहरणों का सूक्ष्म रूप से उन्होने प्रत्यक्षीकरण करके यह चिन्तन किया कि आखिर ये सब क्या हैं, इनका हमारे जन

---

[9] उद्धृत भारतीय वास्तुशास्त्र प्रो, शुकदेव चतुर्वेदी, पृ. 17

जीवन पर क्या प्रभाव होता है इसका विचार किया गया, मन्थन हुआ और इसी मन्थन से उत्पन्न नवनीत ने नए आयाम स्थापित किए, हमारे ऋषियों ने इसे आत्मसात किया और इस तरह सूर्यादि आकाश मण्डलीय ग्रहों का भूमि के हर पदार्थ पर प्रभाव को प्रतिपादित किया। विशेषतया इन सब कारणों में अधिकतम सूर्य चन्द्रमां के आमने सामने या एक साथ होने की स्थिति में परस्पर आकर्षण विकर्षण की स्थिति से पृथ्वी के संतुलन में एक प्रकार का विलक्षण संक्षोभ पैदा कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप हम इस प्रकार के प्रभाव देखते हैं।

पृथ्वी पर पूर्व - पश्चिम - उत्तर - दक्षिण आदि दिशाओं चारों तरफ़ निवाश करने वाले लोगों में जीवनी शक्ति व जीवन शैली में विविधता पाई जाती है। यहां यह समझने की आवश्यकता है कि यह भेद जो कि वहां के लोगों के जीवन शैली में देखने को मिलता है वह भेद उनके रहन सहन खान पान अथवा जाति संस्कृति के भेद के कारण नहीं है अपितु वह भेद वहां पाए जाने वाली जलवायु की विविधता के कारण ही होता है। वस्तुतः जलवायु से वहां के जीवों का स्वास्थ्य - समृद्धि - जीवन शक्ति - खान पान - जीवन शक्ति - शारीरिक वृद्धि आदि सीधे तौर पर प्रभावित होते हैं। सरल रूप से समझें तो जलवायु की इस विविधता में साक्षात् सम्बन्ध सूर्य का ही होता है क्योंकि जलवायु में यह परिवर्तन विविध राशियों में सूर्य की गति स्थिति व भूमि से निकटता व दूरता के प्रभाव के कारण ही उत्पन्न होता है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य वृष अथवा मिथुन राशि में स्थित होता है तब उसकी किरणों में अत्यन्त प्रचन्डता रहती है, इसी प्रकार हेमन्त ऋतु में सूर्य वृश्चिक अथवा धनु राशि में रहता है तब इसकी किरणों में मृदुता रहती है इस प्रचण्डता व मृदुता के पीछे सूर्य का समीपत्व व दूरत्व का भाव ही है। इसी प्रकार सूर्य की किरणों में जब प्रचण्डता रहती है तब वाष्पीकरण के कारण वर्षा व उसकी मात्रा भी सूर्य पर ही आधारित होती है। फलस्वरूप हम यह निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि जलवायु में जो परिवर्तन होता है तथा उस जलवायु का जो प्रभाव जीव जगत पर पड़ता है उसका सीधा सम्बन्ध सूर्य से ही है।

वास्तुशास्त्र में सूर्य के विविध प्रभाव, प्रकाश, तापामान, जलवायु, एवं विविध भौगोलिक परिस्थितियों का आवास निर्माण की प्रक्रिया में पूर्ण रूप से उपयोग होता है। इस शास्त्र के सिद्धान्तों में द्वार निर्माण - बरामदा - आंगन - रसोईघर - खिड़की - झरोखे - खुली जगह आदि के निर्माण में अग्नि तत्व का समुचित उपयोग का ध्यान रखा गया है।

1.4.4 रस तन्मात्रा एवं जल महाभूत

जैसा कि विदित है आकाश से वायु एवं वायु से अग्नि महाभूत का प्रादुर्भाव होता है, इसी तरह अग्नि से जल तत्व की सृष्टि होती है। हमारे जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण घटकों में से एक है जल तत्त्व। प्राणीमात्र के शरीर में पञ्चमहाभूतों के अनुपात में पृथ्वी तत्त्व के बाद जल तत्त्व का ही स्थान आता है। सामान्य जन मानस की भाषा में कहा गया है कि **जल ही जीवन है**। इसलिए वैज्ञानिक दृष्टि से इस ब्रह्माण्ड में जिस जिस ग्रह या उपग्रह पर जल की उपलब्धता है वहां वहां प्राणीयों के जीवन का अस्तित्व पाया जाता है। वैज्ञानिकी भाषा में समझें तो आक्सीजन व हाईड्रोजन के मिश्रण से जल की उत्पत्ति मानी जाती है। जल के बनने में इन दोनों तत्वों का दो - एक का अनुपात चाहिए। अर्थात् हाइड्रोजन का दो अंश तथा आक्सीजन का एक अंश जब आपस में मिलते हैं तब जल की उपस्थिति स्वयं ही हो जाती है। जल तत्त्व की तन्मात्रा रस है। अर्थात् जिस तत्त्व में रस पाया जाता है तथा जिसका आश्वादन किया जा सके निश्चित रूप से उस तत्व में जल तत्त्व की उपस्थिति ही है। पंच ज्ञानेन्द्रीयों में हमारी जिह्वा रस

तत्त्व को पहचानने में सहायक इन्द्रिय है। इसलिए ही इसे रसना भी कहते हैं। जिस अनुपात में भूमि पर जल तत्व की मात्रा उपलब्ध है उसी अनुपात में हमारे शरीर में भी जल तत्त्व की मात्रा उपलब्ध है। जल में रस ही है जो विशेष रूप से पाया जाता है।

सामान्यतया भौगोलिक दृष्टि से देखें तो पूरे भू मण्डल पर सबसे अधिक लोगों अथवा जीव वहां पाए जाते हैं जहां पर जल की उपलब्धता अधिक है। समुद्र, नदी, एवं झील के किनारों पर बसे नगर एवं बस्तियां इसी बात की साक्षी हैं। जल की उपलब्धता एवं मात्रा को ध्यान में रखकर ही लोग भवन निर्माण करते हैं। अतिवृष्टि - अल्पवृष्टि एवं तटवर्ती क्षेत्रों में भवनों का निर्माण वहां की परिस्थितियों के अनुरूप ही किया जाता है। तात्पर्य यह है कि जहां पर अधिक वर्षा होती है अथवा जहां पर कम वर्षा होती है या जहां पर हिमपात होता है अथवा पर्वतीय क्षेत्रों में वहां की व्यवस्तथा के अनुरूप ही भवन निर्माण होता है, अर्थात् जहां पर अतिवृष्टि अथवा हिमपात आदि होते हैं वहां उन स्थानों पर भवन की छत ढालदार बनाई जाती है ताकि अधिक वर्षा अथवा हिमपात होने से घर को अधिक नुकसान न हो। इसी प्रकार जहां अल्पवृष्टि होती है वहां जल की उपलब्धता हेतु जगह जगह पर जल संग्रह हेतु तालाब अथवा जलाशय या बावड़ियों का निर्माण किया जाता है। इसी प्रकार तटवर्ती क्षेत्रों में बाढ़ आदि से बचाब को ध्यान में रखकर निर्माण कार्य करने की बात वास्तुशास्त्र बताता है।

वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण हेतु जल तत्त्व की उत्तम व्यवस्था की विशद चर्चा विहित है। वस्तुतः प्रत्येक भवन में जल की उपलब्धता के लिए नल, भूमिगत नलकूप, बोरिंग, कुंआ, भवन के उपर तथा नीचे पानी की टंकी, गंदा तथा मल जल की व्यवस्था हेतु सेप्टिक टैंक, सीवेज, नाली तथा भवन के फर्शों के ढ़लान आदि का विचार वास्तुशास्त्र में उत्तमतया किया गया है।

1.4.5 गन्ध तन्मात्रा एवं पृथ्वी महाभूत

माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः के अनुसार यह वसुधा हमारी माता है तथा मैं इसका पुत्र हूं, वेद का यह उद्घोष हमारे लिए आदेश है अतः वेद आज्ञा को सिरोधार्य करते हुए हम इस भूमी को अपनी माता मानते हैं। हमारी संस्कृति हमारी इस धरती को मां कहना सिखलाती है। यह धरती मां हमारे लिए तन - मन व जीवन को सभी सुविधाए प्रदान करती है। इतना ही नहीं हमारा आहार - विहार - विश्राम तथा जीवन की अधिकतम गतिविधियों का आधार यह धरती मां ही है। जिस प्रकार से हम बिना मां के जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते ठीक उसी तरह इस धरती मां के बिना हम आवास एवं जीवन की कल्पना नहीं कर सकते हैं। वास्तव में प्राणीमात्र का शरीर आकाश - वायु - अग्नि - जल - पृथ्वी आदि पांच महाभूतों से निर्मित है, किन्तु इन सब में से सबसे अधिक भाग पृथ्वी महाभूत का ही है इसके बाद शरीर में क्रमशः जल - अग्नि - वायु - आकाश का प्रतिशत उत्तरोत्तर कम होता जाता है। यह संयोग की बात है कि हमारे आवास में भी सबसे बड़ा भाग भी इसी पृथ्वी तत्त्व का होता है तथा जल आदि तत्त्व उत्तरोत्तर कम होते जाते हैं। इसी कारण जीव जगत अथवा प्राणी मात्र का भूमि से नैसर्गिक एवं भावनात्मक सम्बन्ध है। क्योंकि धरती हमें हमारी माता से भी अधिक सुविधा व सुरक्षा प्रदान करती है।

पृथ्वी महाभूत की तन्मात्रा गन्ध है, इसलिए कहा भी है कि तत्र गन्धवती पृथ्वी अर्थात् पृथ्वी गन्धवती है। जहां गन्ध का भाव है वहां निश्चित रूप से पृथ्वी की उपलब्धता है। जैसे हमने पूर्व

में जान लिया है कि भूमि का विशेष गुण गन्ध है इसलिए वायु का विशेष गुण स्पर्श है परन्तु वायु किसी भी प्रकार की गन्ध या सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध से युक्त हो तो निश्चित रूप से वहां पृथ्वी तत्त्व की उपस्थिति माननी चाहिए क्योंकि गन्ध पृथ्वी का गुण है वायु का नहीं। इसी प्रकार जल में कोई गन्ध आ रही है तो वहां भी निश्चित रूप से पृथ्वी तत्त्व की उपस्थिति है अन्यथा जल का विशेष गुण तो रस होता है न कि गन्ध क्योंकि जल सर्वथा गन्ध हीन ही होता है।

वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण के लिए पृथ्वी तत्त्व का समुचित उपयोग कैसे किया जाता है ? इसका विस्तार से बताया गया है, सबसे पहले भूमि चयन, भूमि परीक्षा, मिट्टी की गुणवत्ता का परीक्षण, भूमि का प्लवत्व अर्थात् ढ़लान, भूमि का शुभाशुभत्व, शल्योद्धार, भूखण्ड का आकार - प्रकार - विस्तार, समीपवर्ती मार्ग एवं वेध आदि के माध्यम से समुचिततया विचार किया जाता है।

1.5 सारांश

भूमि पर स्थित समस्त जीव धारियों में एक विशेष प्रकार की समानता यह है कि इनकी रचना आकाश- वायु-अग्नि - जल - पृथ्वी आदि पाञ्चमहाभूतों के मिश्रण से ही हुई है। इनमें पूर्वोक्त महाभूत एक निश्चित अनुपात में विराजमान रहते हैं। वास्तव में यह वास्तुशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है कि मनुष्य अपनी सफलता एवं सन्तुष्टी के लिए अपने आवास में आकाश-वायु आदि पांच महाभूतों का उत्तमतया उपयोग कैसे करें ? इसका सम्यक रूप से चिन्तन किया गया है। आवास में हमारी सुविधा - सुरक्षा - शान्ति हेतु मुख्यतया भूमि - जल - तेज - वायु का ही उपयोग किया जाता है। इन चारों महाभूतों के सम्यक उपयोग से आकाश नामक महाभूत स्वतः सक्रिय होकर अपना कार्य कर लेता है।

इस प्रकार वास्तुशास्त्र में विहित सिद्धान्तों के अनुसार पंचमहाभूतों के विधिवत उपयोग से बने आवास में पांचभौतिक तत्त्व वाले समस्त जीव धारियों की क्षमताओं को विकसित करने की शक्ति स्वतः स्फूर्त हो जाती है। इसी विशेषता के कारण हर जीव धारी को कोई न कोई स्थान विशेष प्रिय होता है। किसी व्यक्ति विशेष की शारीरिक व मानसिक क्षमताओं का विकास किसी स्थान विशेष पर जाने से तुरन्त स्फूर्त होने लगता है। इस दृश्यमान जगत में आकाशादि पाञ्चमहाभूतों की ही सत्ता व्याप्त है इसलिए इनके सामञ्जस्य का सतत ध्यान रखकर ही समस्त प्रकार के निर्माण कार्य करने चाहिए।

1.6 शब्दावली

व्यापक - विस्तृत, **दृश्यमान** - जो हमें दिखाई दे रहा है, **सर्वत्र** - सभी जगह, **प्रादुर्भाव** - उत्पत्ति, **जिज्ञासा** - जानने की इच्छा, **आर्षग्रन्थ** - ऐसा ग्रन्थ जिसका कोई लेखक न हो, **ह्रास** - कमी अथवा न्यूनता, **निर्मिति** - जिसका निर्माण किया जाये, **सावकाश** - आकाश में ब्रह्माण्ड को रख देने पर भी शेष जो खालीपन रह जाता है वह, **निरवशेष** - आकाश में ब्रह्माण्ड के स्थित होने पर ब्रह्माण्ड का कोई भी छोटा या बड़ा अंश अवशेष न बच पाए, **रिक्तता** - खालीपन, **अक्षुण्ण** - जिसका कभी क्षय नहीं होता हो, **असम्भव** - जो संभव नहीं है, **सम्यक्तया** - अच्छी तरह से, **उत्तमतया** - सबसे अच्छा, **जीवधारी** - कोई भी जीवित, **वसुधा** - भूमि, **उष्ण** - गर्म, **शुष्क** - सूखा, **लम्बवत** - लम्बा अथवा दण्ड जैसा,

आच्छादित - ढ़का हुआ, **आकर्षण** - खिचाव, **विकर्षण** - दूर होना, **वाष्पीकरण** - सूर्य की गर्मी से समुद्र को जल का भाप बनकर आकाश में उड़ने की प्रक्रीया, **रसना** - जिह्वा अथवा जीव, **अतिवृष्टि** - अत्यधिक वर्षा, **अल्पवृष्टि** - कम वर्षा, **तटवर्ती** - समुद्र अथवा नदियों के किनारों पर स्थित क्षेत्र, **प्लव** - ढ़लान।

1.7 उपयोगी पुस्तकें

01. भारतीय वास्तुशास्त्र - लेखक प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, श्री ला. ब. शा.रा. स. वि. नई दिल्ली।

02. **बृहद्वास्तुमाला-** व्याख्याकार- श्रीरामनिहोर द्विवेदी, प्रकाशक - चौ. सु. प्र. -वाराणसी।

03. **वास्तुरत्नावली-** व्याखाकार- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रकाशक - चौखम्बा ओरियन्टालिया दिल्ली

04. **वास्तुसार -** व्याख्याता- प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी जी, प्रकाशक -ईस्टर्न बुक लिंकर्स- दिल्ली

05. **बृहद् भारतीय कुण्डली विज्ञान -** सत्यदेव शर्मा, प्रकाशक - जगदीश संस्कृत पुस्तकालय- जयपुर

06. **सूर्यसिद्धान्त-** श्री कपिलेश्वर द्विवेदी, प्रकाशक - चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

07. **भारतीय ज्योतिष -** नैमिचन्द शास्त्री, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ- दिल्ली

08. **विश्वकर्माप्रकाश**- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन- वाराणासी।

09. **सिद्धान्त शिरोमणी**- आचार्य भास्कर- सम्पादक बापूदेव शास्त्री- चौ. सं. सी. ऑफिस वाराणसी

1.8 बोध प्रश्न

1. महाभूतों के सन्दर्भ में वास्तु की सामान्य अवधारणा को स्पष्ट करें।

2. तन्मात्राओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

3. पञ्चीकरण को विस्तार से समझाए।

4. आकाश महाभूत को वास्तु के सन्दर्भ में आलोकित करें।

5. वास्तुशास्त्र में दिशाओं के आधार पर पंचमहाभूतों की स्थिति को स्पष्ट करें।

6. वायु महाभूत को वास्तुशास्त्र के सन्दर्भ में समझाए।

7. जल तत्त्व के महत्व को समझाते हुए इसकी वास्तुशास्त्रीय अवधारणा को स्पष्ट करें।

8. यह धरती मेरी मां है और मैं इसका पुत्र हूं को सन्दर्भित करते हुए पृथ्वी महाभूत की वास्तुशास्त्रीय अवधारणा पर निबन्ध लिखें।

9. अग्नि महाभूत की वास्तुशास्त्रीय अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

10. वायु तत्त्व की वास्तशास्त्रीय महत्ता पर लेख लिखें।